Indian Institute of Sexology Bhubaneswar
http://www.iisb.org

REVIEW ARTICLE Open Access

वैदिक-काव्य और कामसूत्रानुसार काम पुरुषार्थ की अवधारणा

Raghavendra Mishra
Correspondence: raghavendramishra403@gmail.com

भूमिका

भारतीय ज्ञान परंपरा में क्रांतदर्शी ऋषियों ने मानव-जीवन को उत्कृष्ट जीवन यापन करने के लिये चार पुरुषार्थों पर दार्शनिक चिन्तन एवं मनन किया| धर्म के लिए धर्मशास्त्र, अर्थ के लिये अर्थशास्त्र, काम के लिए कामशास्त्र और मोक्ष के लिये मोक्षशास्त्र की रचना की| मानव समाज इन्हीं चार पुरुषार्थों को आधार बनाकर अपना जीवन, आनंद-पूर्वक व्यतीत करता है| भारतीय ऋषियों ने सुख(आनंद) प्राप्त करने के दो आधार स्वीकार किये-लौकिक और पारलौकिक|

लौकिक पुरुषार्थ के अंतर्गत धर्म, अर्थ और काम (त्रिवर्ग) आते है, और परलौकिक के अंतर्गत मोक्ष आता है| मोक्ष की प्राप्ति, त्रिवर्ग का सुव्यवस्थित और मर्यादित रूप से पालन के बाद ही प्राप्त होता है क्योंकि 'मोक्ष जीवन का नाम है, मरण का नहीं' | धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में काम को श्रेष्ठ कहा जाता है क्योंकि काम सबका मूलाधार है| काम सृष्टि की उत्पत्ति का मूलाधार है, बिना काम के सृष्टि की कल्पना भी नही की जा सकती है| वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों आदि भारतीय ग्रंथो में काम को संसार का आधार कहा गया है| यह काम तत्त्व संसार के चराचार जगत में विद्यमान है| काम की उत्पत्ति परब्रह्म के ह्रदय से हुयी है| काम जीवन का अनिवार्य अंग है और यह ही प्राणी के सद्गति और दुर्गति का कारण भी है| इसीलिए काम का पालन मर्यादित रूप से करना चाहिए| 'काम' पंचज्ञानेंद्रियों के द्वारा मन माध्यम से तत्तत विषयों में आत्मा को होने वाली अनुकुलनात्मक अनुभूति का परिणाम है| मनुष्य में मूल रूप से जन्मत: तीन प्रवृत्तिया पायी जाती है: १- आहार| २- परिग्रह| ३- संतान| इन्हीं तीनों का अपर नाम है- तृष्णा, लोभ और काम| यह तीनों वस्तुत: एकहीं काम संकल्प से उत्पन्न हुये है| वेद और दर्शन में **'अहं स्याम्'** (मैं होऊं), **'अहं बहु स्याम्'** (मैं सदा बना रहूँ) और **'अहं बहुधा स्याम्'** (मैं सर्वसम्पन होऊं)| ये तीनों रूप एक ही काम संकल्प के है| दर्शनों में इन तीनों को क्रमश: लोकैषणा (आहार इच्छा), वितैषणा (परिग्रह-इच्छा) और दार सुतैषणा (संतान इच्छा) कहा गया है|

काम – मानस प्रक्रिया, मानसिक व्यापार अथवा रागात्मिका वृत्ति का नाम काम है| यह रागात्मिका वृत्ति प्रत्येक प्राणी के भीतर प्रकृत रूप में विद्यमान रहती है| मनुष्य के भीतर जैसे श्रद्धा, मेधा, क्षुधा, भय, निद्रा, स्मृति आदि अनेक वृत्तियाँ रहती है, ठीक उसी प्रकार काम वृत्ति का भी आधान है| राग के रूप में स्थित यह कामवृत्ति मनुष्य की इच्छाओं को जागृत करती है, उसको भौतिक संकल्प-विकल्पों की ओर

प्रेरित करती है| उसी का एकरूप आनंद विधायिनी कला के रूप में भी संपूजित है|

वैदिक मान्यताओं के अनुसार कामभाव से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई| **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** के अनुसार प्रारम्भ में एकाकी प्रजापति ने सृष्टिरचना की कामना से प्रेरित होकर स्वयं को दो रूपों में विभाजित किया| उसका एक भाग नर और दुसरा नारी है-

द्विधा क्रित्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्|
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभु:||

नर के द्वारा नारी में गर्भ धारण प्रक्रिया को विराज कहते है| उस विराज से विराट की सृष्टि हुई| यह जन्मधारण करने वाली संपूर्ण प्रजा विराट का ही रुपान्तरण| प्रजापति के द्विधा विभक्त होने की परिणति अर्धनारीश्वर रूप है| वैदिक अग्नि-सोम उसी के रुपान्तरण है| नारी(माता) का अंश सोमतत्त्व है और नर(पिता) का अग्नितत्त्व है| प्रकृति-पुरुष, सोम-अग्नि, द्यावा-पृथिवी, योष-वृषा और माता-पिता आदि सबके एकत्व भाव का अधिष्ठान 'अर्धनारीश्वर' रूप है| अत: इस प्रकार प्रत्येक नर में नारी और प्रत्येक नारी में नर की सत्ता है| इसी बात को ऋग्वेद में कहा गया है कि, जिन्हें नर कहते है वे नारी है और जो नारी है वस्तुत: नर है | जिसके पास वास्तविक नेत्र है, वही इस रहस्य को देख पाता है-

स्त्रीय: सतीस्ताम् उमे पुंस आहु:
पश्यदक्षन्वान्न विचेतदग्ध:|[1]

सांख्य दर्शन में इस रागात्मिका द्वंद्व भाव को 'गुणक्षोभ' कहा जाता| इसमें बताया जाता है कि सृष्टि से पूर्व सत्त्व, रज और तम तीनों गुण बराबर मात्रा में रहते है| जब प्रकृति और पुरुष का आपसी मिलन होता है तब इन तीनों गुणों में आपस में विकार उत्पन्न होता है| सर्वप्रथम क्रियाशील रजोगुण में स्पंदन होता है और उसके बाद सत्त्व तथा तम प्रेरित होते है| उसके बाद प्रकृति में भीषण गतिशीलता उत्पन्न होती है| ऐसी स्थिति में ये तीनों गुण एक-दुसरे को समाहित करना चाहते है| तब गुणों में कम और अधिक की स्थिति उत्पन्न होती है और गुणों के कम और अधिक के अनुपात से अनेकानेक सांसारिक विषयों का उद्भव होता है|

बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय और तन्मात्राओं से अधिष्ठित, इस पञ्चभौतिक संसार के विकास में नर-नारी का मिलन होता है| प्रत्येक नर-नारी में इस मिलन की प्रवृत्ति रागात्मिका वृत्ति के कारण होती है, जो कि प्रत्येक नर-नारी में प्राकृतिक रूप से रहता है| काम मनसिज या संकल्पयोनि है| मन का अधिष्ठान मन्यु है| मन्यु भाव के लिए जायाभाव आवश्यक है| मन्युभाव और जायाभाव ही प्रकृति-पुरुष है| मन्यु भाव में स्थित मन ही काम संकल्प की सृष्टि करता है| काम की यह सृष्टि अमृतमयी अथवा आनंदमयी कहीं जाती है|

काम के कुछ रूप:

१. मदन- जो जीव को मद से उन्मथित, उन्मत्त, अवश कर दे वह मदन है (मद्यति इति मदन:)|

[1] अस्यमावीय सूक्त

२. मन्मथ- जो बिना प्रयास किये ही संपूर्ण संसार को को उन्मथित कर दे, वह मन्मथ है- **श्रमो मद्वाणानां क इव भुवनोन्माथविधिषु|**

मन के मंथन के द्वारा उत्पन्न होने के कारण इसको मन्मथ कहते है| मन्मथ काम के देवता है, यह जीवों के मन में रहते है|

३. कंदर्प – जगत के सभी प्राणियों को दर्पयुक्त बना देना ही कंदर्प कहलाता है अर्थात सबको आत्मसंयम से च्युत कर देना| कं न दर्पयती अथवा कं दर्पयती|

४. पंचसायक- पंचसायक अर्थात पांच बाण वाला| काम के पांच बाण, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ है- चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा| पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के पञ्च विषय है- रूप, शब्द, गंध, रस, और स्पर्श|

पांच ज्ञानेन्द्रियाँ जब अपने-अपने विषयों से संयुक्त होती है तब सुरत सुख की उपलब्धि होती है| अपने पांच बाणों के प्रभाव से काम सांसारिक नर और नारी की पंचेंद्रियों में प्रवेश करके एक-दुसरे के प्रति आकर्षण एवं उद्दीपन की रूचि पैदा करता है| जिससे वे वासना के वशीभूत हो संसार की सभी बातों को भूलकर मर्यादा का उलंघन कर काम-तृष्णा की तृप्ति के लिए भटकने लगते है|

कामदेव के प्रसंशा में कहा जाता है- वह धनुर्धारी विचित्र है, जो स्वयं तो अशरीरी है किन्तु जिसने वियोगिनी स्त्रियों के नेत्रों का धनुष धारण कर, उस पर गुण की डोरी चड़ाकर और पुष्पों के बाण आरोपित कर तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करता है-

बाणेष्वारोप्य गुणान्विधाय चापं वियोगिनी नयने|
स्वयमतनुर्जगदेतज्ज्यति सुमनास्त्रो विचित्रधानुष्क:||

इसी प्रकार से विभिन्न स्थानों पर काम के विषय में चिंतन-मनन हुआ है|

वैदिक-काव्यानुसार काम पुरुषार्थ की अवधारणा

काम तत्व पर चिंतन करते हुए वैदिक ऋषि कहता है कि- सृष्टि के उत्पत्ति के समय सर्वप्रथम 'काम' अर्थात सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुयी, जो परब्रह्म के ह्रदय में सर्वप्रथम सृष्टि का रेतस् अर्थात बीजरूप कारणविशेष था| जिसे ऋषियों ने परब्रह्म के गंभीर चिंतन से प्राप्त किया था| अत: ऋग्वेद के इस कथन से स्पष्ट है कि सृष्टि के मूल कारण 'काम' की उत्पत्ति परब्रह्म के ह्रदय से हुई-

कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेत: प्रथम: यदासीत्|
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा:||[2]

परमेश्वर को यह इच्छा हुई की मैं अपना विस्तार करूं और वह अनेक हो गया- तदैक्षत बहुस्याम् |

शिव (पुरुषाग्नि) और शक्ति(योषाग्नि) के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति हुई-

शिवशक्ति संयोगात् जायते सृष्टिकल्पना|[3]

पुरुष (ब्रम्ह, नर+नारी) काममय है, उसका स्वरूप, उसकी शक्ति और प्रकृति सब कुछ काममय है-

[2] ऋग्वेद. नास. सू. १०/१२९/४
[3] अ. वे. ९/२/१९

सऽकामयत बहुस्यां प्रजायेत । काममय एवायं पुरुषः||

इसी कामवृत्ति के कारण हिरण्यगर्भ से सर्वप्रथम बीज (विराट) की उत्पत्ति हुई, अर्थात जैसे एक विशाल वट वृक्ष एक छोटे से बीज में बंद रहता है| उसी प्रकार यह विराट् विश्व हिरण्यगर्भ में समाहित था| विराट में परिणत होकर वह निरंतर विकसीत होता गया| ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि, प्रारम्भ में केवल हिरण्यगर्भ था| जन्म लेने पर वह सभी भूतों का एकमात्र स्वामी बना-

हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्| सदाधार पृथिवीं द्यामुपेताम्||

जब ऋग्वेद में प्रश्न यह उठता है कि कौन जानता है, कौन कह सकता है कि यह सृष्टि कहां से आयी, किसने इसको उत्पन्न किया? देवगण भी काम की उत्पत्ति के बाद हुए| फिर कौन जानता है कि यह सृष्टि कहा से आयी-

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत, कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः|

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा, को वेद यत आबभूव||

इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें श्रुतियों में ही मिलता है| विज्ञान रूप अव्यक्त जगत के सृजन और जीवों को उनके अदृष्ट के फलोपयोग के लिए, उस विराट पुरुष हिरण्यगर्भ को सृष्टि के लिए कामना हुई| उस आदि पुरुष से जब एकाकी न रहा गया, तब उसने अपने साथ के लिए दुसरे की इच्छा की-

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्, स हैतावानास यथा स्त्री पुमाऽसौ समपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वैधापातयत्तत पतिश्च पत्नीं चाभवताम्|[4]

इसी इच्छा पूर्ति के लिए अजन्मा होकर भी वह गर्भ में जाता है और बहुधा जन्म धारण करता है-

प्रजापतिश्चरति गर्भ अंतर जायमानो बहुधा विजायते|[5]

'मुंडकोपनिषद' में कहा गया है कि- जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि से सहस्त्रों स्फुलिंग उठते है, उसी प्रकार उस अनश्वर, अविनाशी पुरुष से विभिन्न वस्तुएं उत्पन्न होती है और प्रलयकाल में उसी में समा जाती है-

यथा सुदीप्तात्पावकात् स्फुलिंगाः सहस्त्रशः प्रभवन्ते सरूपाः|

तथाक्षराद्विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति||

भारतीय दर्शनों में पुरुष-प्रकृति अथवा ब्रह्म-माया के सम्बन्ध से जगत का उद्भव बताया जाता है| सत् पुरुष के साथ असत् प्रकृति उसी प्रकार से संयोंजित है, जैसे की एक पृष्ठ के साथ दूसरा पृष्ठ, बर्तन के बाहरी भाग की भांति भीतरी भाग अथवा शरीर के साथ छाया| 'यजुर्वेद' में पुरुष को प्रयति और प्रकृति को स्वधा कहा जाता है| प्रयति ने आधान के लिए प्रयत्न किया और स्वधा ने उसका धारण किया क्योंकि स्वधा नीचे थी और प्रयति ऊपर-

'स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्' |

पुरुष अविकारी है और प्रकृति प्रधान विकारी है| जिस प्रकार स्फटिक पर रंगीन प्रकाश की आभा पड़ती है,

---

[4] वृहदारण्यक उप. १/४/३

[5] यजुर्वेद

वैसे ही पुरुष पर प्रकृति के विकारों का कृत्रिम प्रभाव पड़ता है और तब यह मायामयी सृष्टि सुख, दु:ख, कर्ता, धर्ता, भोक्ता आदि भावों का अनुभव करती है| माया परमेश्वर की बीजशक्ति है| माया ही अनेक नाम रूपों का कारण है| माया और परमेश्वर वस्तुत: एक ही है क्योंकि जिस प्रकार आग की अगिन्त्व आग से अलग नही है| माया के माध्यम से ही परमेश्वर को इच्छा होती है अर्थात माया ही परमेश्वर की कामभावना, मानसिक क्रिया है|

श्री कृष्ण ने 'गीता' में कहा है कि- 'हे अर्जुन, नाना प्रकार की योनियों में जितनी मूर्तियाँ अर्थात शरीर उत्पन्न होते है, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापित करने वाला पिता हूँ-

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तय: संभवन्ति या:| तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद: पिता||[6]

आगे भी, श्री कृष्ण कहते है कि, मैं जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे द्वारा ही उसका प्रवर्तन होता है-

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते| (गीता)

अत: एकत्व से द्वित्व और अनेकत्व की भावना के मूल में काम ही एकमात्र कारण है| परमेश्वर के ह्रदय में प्रारम्भ से ही वह बीज(रेतस्) रूप में विद्यमान था और उसी की प्रेरणा, उद्बोधना, चेष्टा से परमेश्वर में सृष्टि रचना के लिए कामना, इच्छा उत्पन्न हुई| उस काममय परम पुरुष, पुरुषोत्तम, बीजप्रद पिता द्वारा अनंत काल से इस जीव जगत का संचालन होता गया| उसकी विराट सत्ता का, अनंत विभूतियों का, विश्वरूप दर्शन का वर्णन श्रुतियों, उपनिषदों और दर्शनों में देखने को मिलता है| 'गीता' में श्री कृष्णा कहते है कि, हे अर्जुन, मैं सब प्राणियों में धर्मानुकुल कामस्वरूप हूँ-

धर्माबिरुधो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ:|[7]

काम के विषय में शिव पुराण में उल्लेख आता है कि- काम संकल्प है- **कामो संकल्प एव हि|**[8]

त्रिवर्ग की चर्चा छान्दोग्योपनिषद में आती है जिसमें धर्म, अर्थ और काम को प्रधान बताया जाता है-

प्रजापतीर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्त्रवास्ताम-भ्यतपत्|[9]

छान्दोग्योपनिषद में स्त्री संभोग की तुलना सामवेद से करते हुए कहा गया है कि- प्रेयसी को सन्देश भेजना 'हिंकार' है, उसे प्रसन्न करने की चाटुकारिता 'प्रस्ताव' है, उसके साथ शयन 'उद्गीथ' है, संभोग 'प्रतिहार' है और मैथुनक्रिया के अंत में होने वाला वीर्यस्खलन 'निधन' है-

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्ताव: स्त्रिया सह शेते स उद्गीथ: त्रीम् सहोते स प्रतिहार: कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोक्तं|[10]

परब्रह्म का आधा भाग पुरुषरुपी अग्नि है, उसमें जब देवगण अन्न का होम करते है तो उस आहुति से वीर्य की उत्पत्ति होती है-

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुते रेत: सम्भवति|[11]

---

[6] गीता. १४/४

[7] गीता, ७/११

[8] धर्मसंहिता, अष्टम अध्याय

[9] छान्दोग्योपनिषद २/२३/२

[10] छान्दोग्योपनिषद २/१३/१

[11] छा. उ. ५/७/२

वह वीर्य ही प्राण और यश है- **प्राणो वै यशो वीर्यम्।**[12]
जो शेषार्थभाग स्त्रीरूपी अग्नि है उसका उपस्थ ही समिधा है, पुरुष जो उपमंत्रण करता है वह धूम है, योनि ज्वाला है एवं रतिरुप जो व्यापार है वह अंगार है तथा उससे जिस सुख की प्राप्ति होती है वही विस्फुलिंग है-

योषा वा अग्नि: तस्या उपस्थ एवं समिद्यदुपमंत्रयते स धूमो योनिरचिर्यदन्त: करोति ते अंगारा अभिनन्दा विस्फुलिंगा।[13]

आनंद का एकमात्र स्थान उपस्थ है- **सर्वेषामानंदामुपस्थ एकायनम्।**[14]
संतानोत्पत्ति अथवा पुत्रमंथकर्म का उल्लेख कामसूत्र के परिप्रेक्ष से वैज्ञानिक रूप में 'वृहदारण्यक उपनिषद' में प्राप्त होता है। जिसमें मर्यादित एवं सुव्यवस्थित दाम्पत्य जीवन का वर्णन किया गया है-

एषां वै भुतानां पृथिवी रस: पृथिव्या आपोऽपामोषधय औषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणाम् फलानि फलानां पुरुष: पुरुषस्य रेत:।[15]

अर्थात इन भूतों का रस पृथिवी है, पर्थिवी का रस जल हा, जल का रस औषधियाँ है, औषधियों का रस पुष्प है, पुष्पों का रस फल है, फलों का रस पुरुष है, पुरुष का रस शुक्र है।

स ह प्रजाप्तिरीक्षान्चक्रे हन्तास्मै प्रतिष्ठां कल्पयानीति स स्त्रियाँ ससृजे ताँ सृष्ट्वाध उपास्त तस्मात् स्त्रियमध उपासीत स एतं प्रान्चं ग्रावाणमात्मन एव स्मुदपारयतेनैनामभ्यसृजत।[16]
प्रजापति ने विचार किया की मैं इस वीर्य की स्थापना के लिए किसी योग्य भूमि का निर्माण करूं, अत: उन्होंने स्त्री की सृष्टि की। उसी की सृष्टि करके उन्होंने उसके अधोभाग (मैथुन कर्म का विधान किया) की उपासना की, अत: स्त्री के अधोभाग का सेवन (उपासना) करे। प्रजापति ने इस उत्कृष्ट गतिशील प्रस्तरखंड-सदृश शिश्नेंद्रिय को (उत्पन्न करके उसे) स्त्री की (योनि की) ओर प्रेरित किया, उससे इस स्त्री का संसर्ग किया। **तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ स यावान् ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोको भवति तावानस्य लोको भवति य एवं विद्वान्धोपहासं चरत्यास्य स्त्रिय: सुकृतं वृन्जते।**[17]
स्त्री की उपस्थेंद्रिय वेदी है, वहां के रोये कुशा है, योनि का मध्य भाग प्रज्वलित अग्नि है, योनि के पार्श्व भाग में जो दो कठोर मांस खंड है उनको मुष्क कहते है, वे दोनों मुष्क ही 'अधिषवण' नाम से प्रसिद्ध चर्ममय सोमफलक हैं। वाजपेय यज्ञ करने से यजमान को जितना पुण्यलोक प्राप्त होता है, उतना ही उसे प्राप्त होता है। जो की इस प्रकार जानकर मैथुन का आचरण करता है, वह इन स्त्रियों के पुण्य को अवरुद्ध कर लेता है और जो इसे नही जानता है, वह यदि मैथुन करता है तो स्त्रियाँ ही उसके पुण्य को अवरुद्ध कर लेती है।

---

[12] बृ. उ. १/२/६
[13] छ. उ. ५/८/१
[14] बृ. उ. २/४/१
[15] बृ. उ. ६/४/१
[16] बृ. उ. ६/४/२
[17] बृ. उ. ६/४/३

इस मैथुन कर्म से वाजपेय यज्ञ के समान पुण्य प्राप्त होता है| मैथुन कर्म को वाजपेय यज्ञ के समान जानने वाले महर्षि 'आरुणिउद्दालक' 'मौद्गल्यनाक' और 'कुमारहारीत मुनि' यह विधान करते है- 'जो व्यक्ति ऋतुकाल से पूर्व ही इस वीर्य को पत्नी में आधान करते है या जल में वीर्य स्खलन करते है, वे समाज द्वारा बहिष्कृत होते है और इसके लिए उन्हें प्रायश्चित करना होता है| फिर पुरुष अपनी प्रेयसी के पास जाकर उसकी प्रशंसा करें एवं उसके रजस्वलापन चिन्ह को देखने के बाद पुत्रोत्पत्ति हेतु मैथुन कर्म के लिए निवेदन करे| उसके बाद पत्नी के कहने के बाद मैथुन करके गर्भधारण कराये' |

अत: इस प्रकार से उपनिषद् का ऋषि मनुष्य को पूर्ण रूप से बताने के बाद उसका समावर्तन संस्कार करके गृहस्थाश्रम में जाने की आज्ञा देता है, और कहता है की- वत्स ! सदा सत्य बोलो, धर्म का पालन करो, अप्रमत्त होकर वेदों का स्वाध्याय करो और गृहस्थाश्रम में जाकर संतानोत्पादन की परम्परा को जीवित करो-

सत्यं वद | धर्मं चर | स्वाध्यायान्माप्रमद:| आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी: ||[18]

अत: काम तत्त्व ही सम्पूर्ण जगत का मूल है| वेद भी जगत की अवधारणा, काम तत्त्व से ही देता है| बिना काम के सृष्टि के निर्माण के विषय में विचार भी नहीं किया जा सकता है| सम्पूर्ण विश्व का मानव समाज काम तत्त्व से ही है|

[18] तै. उ. १/११/१

कामसूत्रानुसार काम पुरुषार्थ की अवधारणा

काम- सृष्टि-उत्पत्ति का मूलाधार काम ही है| काम शब्द का सामान्य अर्थ- "कामयते इति काम:" है, अर्थात् विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाला मानसिक आनंद ही वास्तविक काम कहलाता है| ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के मंत्र में आता है कि-

कामस्तदग्रे समवर्त्ततधि मनषो रेत: प्रथमं यदासीत्| सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा|| प्रजापतिर्हि प्रजा: सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्ध नं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच|[19]

काम शास्त्र की परम्परा बताते हुए वात्स्यायन कहते है कि- प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न करके उनके जीवन को नियमित करने वाले शास्त्र का सर्वप्रथम एक लाख श्लोकों में प्रवचन किया|

प्रारम्भ में ही वात्स्यायन ने **'धर्मार्थकामेभ्यो नम:'**[20] के माध्यम से उल्लेख किया है कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत धर्म, अर्थ और काम हो नमस्कार है|

काम दो प्रकार का होता है- सामान्य और विशेष| वात्स्यायन, सामान्य काम के स्वरूप के विषय में कहते है कि -

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनासाधिष्ठितानाम् स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यत: प्रवृत्ति: काम:|[21]

[19] कामसूत्र १/५/४

[20] कामसूत्र १/१/१

[21] कामसूत्र १/२/११

आत्मा से संयुक्त, मन से अधिष्ठित श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका| इन पञ्च ज्ञानेन्द्रियो को अपने-अपने विषय में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध में अनुकूल रूप में प्रवृत्ति को काम कहते है| वस्तुत: काम को मानस व्यापार भी कहा जाता है, जो कि एक रागात्मिका प्रवृत्ति है| यह रागात्मिका प्रवृत्ति संसार के सभी जीवों में प्रतिष्ठित है और इसी के माध्यम से संसार की रचना होती है| काम के व्यावहारिक(विशेष) पक्ष को इस प्रकार से व्यक्त किया जाता है कि आलिन्गनादि प्रासंगिक सुख से अनुविद्ध स्तनादि विशेष अंगो के स्पर्श से जो फलवती अर्थाप्रतीति(सुयोग्य-संतानोत्पादन है) अर्थात् वास्तविक सुखोपलब्धि होती है, वह काम कहलाता है| काम पुरुषार्थ को मर्यादित रूप में भारतीय परम्परा में श्रेष्ठ माना जाता है| कामसूत्र का ज्ञान(कामकला) कामसूत्र से और कामकला में निपुण नागरिक जनों से प्राप्त करना चाहिए| काम मानव जीवन का अनिवार्य अंग है और काम के बिना ससार की उत्पत्ति ही नही कि जा सकती है| काम के पश्चात ही धर्म(मोक्ष), अर्थ का अनुशीलन आता है| अत: काम परम पुरुषार्थ और एक कला है-

स्पर्शविशेषविषयात्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीति: प्राधान्यात्काम|[22]

काम के विषय में वात्स्यायन आगे कहते है कि- काम जीवन का अनिवार्य एवं अपरिहार्य अंग है और प्राणी की सुगति और दुर्गति दोनों का ही सहज कारण भी है| काम मानव-जीवन की स्थिति-निर्धारण का हेतु होने के कारण आहार की तरह है और साथ ही यह धर्म और अर्थ का परिणाम है-

शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारधर्मानो हि कामा:| फलभूताश्च धर्मार्थयो:||[23]

यदि इस जगत से काम को निकाल दे तो जगत अस्तित्वहिन हो जायेगा, फिर धर्म, अर्थ और मोक्ष की आवश्यकता ही नही रह जायेगी| अत: जगत को बनाये रखने के लिए काम की आवश्यकता है, और काम से ही सबका अस्तित्व है| क्योंकि काम से ही यौवन संतुष्ट होता है, और यौवन ही गृहस्थाश्रम का मूलाधर है| इसीलिए वात्स्यायन यौवन में ही काम के व्याहारिक सेवन करने की आज्ञा देते है- **कामं च यौवने|**[24]

युवास्था में काम का उपयोग धर्म और अर्थ में रहकर ही करना चाहिए, तभी काम सकारात्मक तरीके से फलीभूत होता है, इसीकारण से वात्स्यायन कहते है कि- 'धर्म, अर्थ और काम का परस्पर सम्मिलित एवं अतिरोधी भाव से सेवन करना चाहिए- **शतायुर्वै.....अन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्ग सेवेत|**[25]

चाणक्य कहते है कि – 'धर्म और अर्थ के अविरोधी 'काम' का ही सेवन करना चाहिए –

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत|

अत: इस प्रकार से वात्स्यायन ने त्रिवर्ग को स्वीकार किया है और काम को मूल माना है| धर्म, अर्थ और काम को शास्त्रोक्त विधि से करने के पश्चात मोक्ष

[22] कामसूत्र १/२/१२

[23] कामसूत्र १/२/३७/

[24] कामसूत्र १/२/३

[25] कामसूत्र १/२/१

स्वत: प्राप्त हो जात है| काम गृहस्थ का मूल है और गृहस्थ सबका मूल है, इसलिये मर्यादा में होकर सब कार्य करने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है|

उपसंहार

काम तत्त्व के विषय में वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, शास्त्र, कामसूत्र आदि में बहुत ही बार उल्लेख किया गया है, क्योंकि काम जगत का मूल है| वास्तव में काम अनैतिक और अश्लील नही है और त्याज्य भी नही है| कामतत्त्व जगत के चराचर सभी जीवों में विद्यमान है| वेद, उपनिषादादि में जो काम के विषय में वर्णन किया गया है, उसी दार्शनिक स्वरूप को ध्यान में रखकर कामशास्त्र के प्रणेताओं ने कामशास्त्र की रचना की| उपनिषदों एवं कामसूत्र में वर्णित काम के दार्शनिक पक्ष को बहुत ही मार्मिक तरीके से प्रस्तुत किया गया है क्योंकि वस्तुत: दोनों कामतत्त्व के एकही स्वरूप की बात करते है, जैसा कि ऊपर सभी बाते विस्तार से वर्णित हो चुकी है| पुरुषार्थ त्रिवर्ग में काम की प्रधानता है, क्योंकि काम समस्त प्राणियों के उद्भव एवं इच्छाओं कि पूर्ति का कारण है| काम ही समस्त सृष्टि का मूल बीज है| आधुनिक विश्व में वैज्ञानिक, सामजिक और आर्थिक दृष्टि से कामसूत्र अत्यावश्यक है| यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नही होगी कि “आधुनिक समाज के लिये कामसूत्र एक औषधि के तुल्य है” | पारमार्थिक दृष्टि से त्रिवर्ग का अंतिम लक्ष्य अभ्युदय और नि:श्रेयस है| जैसा कि कामसूत्र के प्रारम्भ में ही धर्म, अर्थ और काम को (मंगलाचरण के रूप में) नमस्कार किया गया है- **धर्मार्थकामेभ्यो नम:(का.सू.१.१.१)|** पुरुषार्थ तीन ही है, क्योंकि मोक्ष को धर्म के अंतर्गत समाहित किया गया है, बिना धर्म के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है| पुरुषार्थ त्रिवर्ग से ही लौकिक जीवन(गृहस्थ) सुखमय होता है और धर्म के अनुकूल अर्थ प्राप्ति करने पर एवं धर्म के अनुकूल ही काम कि प्राप्ति करने पर मोक्ष स्वत: प्राप्त हो जाता है|

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद (शौनकीय), भाष्यकारसायणाचार्यः, (सं.) विश्वबन्धुः, विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थानम्, होशियारपुर : वि. सं. २०१८.

2. अथर्ववेदकासांस्कृतिकअध्ययन, कपिलदेवद्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधानपरिषद्, ज्ञानपुर(भदोही) : २०१३.

3. ईशादिनौउपनिषद्, गीताप्रेस,गोरखपुर, सं.२०६६.

4. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, सायण, (सं.) रामअवध पाण्डेय, मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली : १९७३.

5. कामसूत्रम्, (श्रीयशोधरविरचितया “जयमंगला” व्याख्या). वात्स्यायन, (सं.) पारसनाथ द्विवेदी (“मनोरमा” हिंदी-व्याख्या). वाराणसी : चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, २०१४.

6. कामसूत्रम् (श्रीयशोधरविरचितया "जयमंगला" व्याख्या). वात्स्यायन, (सं.), रामानन्द शर्मा ("जया" - हिंदी-व्याख्या). वाराणसी : चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, २००४.

7. कामसूत्र परिशीलन, वाचस्पति गैरोला, दिल्ली : चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, २००८.

8. कामसूत्रकालीन समाज एव संस्कृति, संकर्षण त्रिपाठी, वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन, २००८.

9. छान्दोग्योपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७१.

10. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पाण्डुरंग वामन काणे, (अनु.) अर्जुन चौबे काश्यप, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग), १९९२.

11. नागरसर्वस्वम्, पद्मश्री, (सं.) रामसागर त्रिपाठी, तारावती त्रिपाठी. दिल्ली : चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, २००४.

12. पुरुसार्थ, भगवानदास, वाराणसी : चौखम्भा विद्याभवन, १९६६.

13. भारतीय दर्शन- आलोचन और अनुशीलन, चंद्रधर शर्मा, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, २०१३.

14. रतिरहस्यम् (कांचीनाथकृत "दीपिका" टीका). कोक्कोक, (सं.) रामानन्द शर्मा, ("प्रकाश" हिंदी-व्याख्या). वाराणसी : चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, २००९.

15. रामायण, (प्रथम-खण्ड). वाल्मीकी, हिंदी अनुवादसहित, गीताप्रेस गोरखपुर, पुनर्मुद्रण ४४.

16. वैदिकसाहित्य एवं संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदामन्दिर, वाराणसी : १९६७

17. वृहदारण्यकोपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७१.

Cite this article as
Mishra R. Concepts of Kama Purusartha in Vedic texts and Kamasutra. Indian Institute of Sexology Bhubaneswar February 2017.